* ओ३म् *

वैराग्य शतक

हिन्दी पद्यानुवाद सहित

अनुवादक—दुर्गाप्रसाद गुप्त

प्रकाशक—

ब्र० प्रभुदत्त शास्त्री

भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

प्रथमबार	सन्	मूल्य
१०००	१९५०	=)

दो शब्द

विद्वत् शिरोमणि प्रकाण्ड पण्डित महाराजा श्री भर्तृहरि जी के तीनों शतक परम प्रसिद्ध हैं। उन में भी वैराग्य शतक मनुष्यमात्र के लिये परम हितकारी है। वास्तव में यह प्रकरण श्री भर्तृहरि जी का हृदय है। अन्त में उनको इसी के मनन करने से शान्ति मिली। उसी प्रकरण का यह सरस पद्यानुवाद है। आशा है यह अनुवाद भाषा की सरलता भावों की अविकलता, एवं छन्दों की रोचकता के कारण पाठकों को रुचिकर होगा।

गुप्त जी की रचनाशैली एवं पद्यबन्ध आदि सभी कविता के गुण प्रशंसनीय हैं। आपकी कविता सरल सरस एवं भावपूर्ण होती है। यद्यपि उनकी यह रचना परतन्त्र है तथापि इसके पढ़ने से पाठकों को ज्ञात होगा कि आपने इसमें कितनी यथार्थता निबाही है आशा है पाठक इसे मनन करके श्रेय के भागी बनेंगे।

—प्रभुदत्त शास्त्री,
सम्पादक-"भक्ति"

अनुवादक का मंगलाचरण

(लक्ष्मी-पार्वती सम्वाद)

गिरिजे ! तुव भिक्षुक आज कहां गयो ?
आलि ! सुनो बलिराज के द्वारे ।
अलि नृत्य करे नित सो कित है ?
व्रज में सखि ! सूर-सुता के किनारे ॥
पशुपाल कहां ? मिल जाय वहीं,
कहीं चारत गाय अरण्य मँझारे ।
यह हास-विलास महा सुख रासि,
विनास करै सब पाप हमारे ॥

श्रीभर्तृहरि रचित

वैराग्य शतक

(१)

चूडोत्तंसित चन्द्र चारु कलिका चंचच्छिखा भास्वरो।
लीलादग्धविलोल काम शलभः श्रेयो दशाग्रे स्फुरन्॥
अन्तःस्फूर्जदपारमोहतिमिर प्राग्भार मुच्चाटयन्।
चेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः॥

(२)

भ्रांत देशमनेकदुर्गं विषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं।
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला॥
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत्।
तृष्णे जृंभसि पापकर्मपिशुने नाद्यापि संतुष्यसि॥

(३)

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो।
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः॥
मंत्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः।
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णे सकामाभव॥

वैराग्य शतक का

पद्यानुवाद

—:o:—

(१)

चंद्र किरण सुन्दर कलिकायें भूषणसम सिर भूषित हैं,
चंचल काम-पतंग दहन कर,शुभ-पथ में आगे नित हैं।
अंतःकरण-मोह-मद विस्तृत-अन्धकार करते हैं क्षय-
ज्ञान-प्रकाशक योगिजनोंके हृदयनिवासी "शिव" की जय

(२)

भ्रमण किया दुर्गम देशोंमें किंतु हुआ ना कुछ भी प्राप्त।
स्वाभिमान तज नीच जनोंकी सेवामें की आयु समाप्त॥
काक समान सशंकित रह कर खाता रहा पराया टूक।
पाप-पंक-रत-तृष्णे ! तेरी अब भी नहीं मिटी पर भूक॥

(३)

धनहित धरणी खोदि रसायन-हेतु फूँकता धातु रहा,
रत्नोंके हित सिंधु मथा कर नृप प्रसन्न हित यत्न महा।
श्मशानों में रात रात भर मंत्र सिद्धि हित जाप किया,
मिली न कानी कौड़ी तृष्णे ! अधिक न फिर मैं धापलिया॥

(४)

खलालापाः सोढ़ाः कथमपि तदाराधनपरै—
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ॥
कृतो वित्तस्तम्भः प्रतिहतधियामञ्जलिरपि ।
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥

(५)

अमीषां प्राणानां तुलित बिसनीपत्रपयसां ।
कृते किन्नास्माभिर्विगलित विवेकैर्व्यवसितम् ॥
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिः संज्ञमनसां ।
कृतं मानव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥

(६)

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न संतोषितः ।
सोढा दुःसह शीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः ॥
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शंभोःपदं ।
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः ॥

(७)

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः
कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः

(४)

दुष्ट जनों की सेवा में सब ठहे और दुर्वाक्य सहे-
अन्तर्भाव छुपा सूने मन हँसते भी हम सदा रहे।
चितको थिर कर हाथजोड़ उन हँसने वालोंसे की जांच
झूठी आशा वाली तृष्णे खूब नचाया मुझको नाच ॥

(५)

पद्म-पत्रपर जल-कण समथिर, इन चंचल प्राणों हितहाय
ज्ञान नष्ट हम लोगों ने क्या नहीं किया उद्योग उपाय ?
धन से जो मद मत्त हुये उन धनिकोंके सन्मुख सुखमान
निर्लज हो निज मान मिटाया पाप कमाया कर गुणगान॥

(६)

क्षमारूपसे क्षमा न की और गृहसुख छोड़ा होय निराश
दुस्सह शीत-तप-वात सहेपर तप न कियाकरके विश्वास
धनका ध्यानधरा निशिवासर,हरिचरणोंका ध्यानविहाय
मुनियोंके से काम किये पर, वंचित रहे फलों से हाय ॥

(७)

विषयों को हमने ना भोग किया हमारा ही भुगतान।
तप न तपा पर किया हमें ही तपने तपा तपा हैरान ॥
काल नहीं व्यतीत हुवा सब आयू बीती हीन हुये।
तृष्णा तू बूढ़ी न हुई हम बूढे जीर्ण मलीन हुये ॥

(८)

वलिभिर्मुखमाक्रांतं पलितेनाङ्कितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

(९)

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुष बहुमानोऽपि गलितः।
समानाः स्वर्याता सपदि सुहृदो जीवितसमाः॥
शनैर्यष्ट्योत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने।
अहो मूढः कायस्तदपि मरणापाय चकितः॥

(१०)

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा तरङ्गाकुला।
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी॥
मोहावर्तसुदुस्तराति गहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी।
तस्याः पारगता विशुद्ध मनसोनन्दन्ति योगीश्वराः॥

(११)

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलम्।
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः॥
महद्भिः पुण्यौघैश्चिर परिगृहीताश्च विषयाः।
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम्॥

(८)

मुँहका चमड़ा सिकुड़ गया है श्वेत हुये हैं सिरके बाल
अंग शिथिल होगये मगर तृष्णा चलती तरुणोंकी चाल

(९)

विषयेच्छा कम हुई सभी लोगोंमें अपना मान मिटा।
साथी कुछ मर गये और मरने वाले हैं साथ छुटा॥
लकड़ी लेकर चलते हैं आंखों में अन्धापन छाया।
पर अपना मरना सुन होती चकित महानिर्लज्ज काय॥

(१०)

आशा नदी मनोरथ जल में तृष्णा लहरें लहराती।
तीव वितर्क राग ग्राहों से भरी धैर्य द्रुम को ढाती॥
दुस्तर गहन अगाध भयंकर मोह चक्र चिन्ताकारी।
योगी जन ही पार पहुँचते आनन्दित शुद्धाचारी॥

(११)

सांसारिक कामों में तो कुछ नहीं दीखती कुशलाई।
प्राप्त पुण्य-फल से स्वर्गादिक सभी अंततः दुखदाई॥
विषयादिक संग्रह करते जो महा पुण्यकर आयुपर्यंत।
दुखदाई ही विषयासक्तों को हो। है वह भी अन्त॥

(१२)

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयः ।
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ॥
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः ।
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुख मनन्तं विदधति ॥

(१३)

ब्रह्मज्ञान विवेकनिर्मलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं ।
यन्मुञ्चन्त्युपभोगभांज्यपि धनान्येकांततो निःस्पृहाः॥
संप्राप्तान्न पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढ़ प्रत्ययान् ।
वाञ्छामात्रपरिग्रहानपि परं त्यक्तुं न शक्तावयम् ॥

(१४)

धन्यानां गिरि कन्दरेषु वसतां ज्योतिः परं ध्यायता,
मानन्दाश्रुकणान् पिबन्ति शकुना निःशंकमंकेशयाः ।
अस्माकं तु मनोरथो परिचित प्रसाद वापीतट-
क्रीड़ा कानन केलिकौतुक जुषामायुः परं क्षीयते ॥

(१५)

भिक्षाशनं तदपि नीरस मेक वारं,
शय्या च भूः परिजनो निज देह मात्रम् ।
वस्त्रं विशीर्ण शत खण्ड मपीचकन्था,
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ।

(१२)

छुट जायेंगे अवश एक दिन भोगे हुये सभी यह भोग ।
इसमें कुछ सन्देह नहीं होना है आखिर दुखद वियोग
सुखी बने क्यों नहीं मनुष पहिले ही इनको तजकर आप
क्योंकि जब यह छूटेंगे तब देंगे बहुत बुरा सन्ताप ॥

(१३)

बड़ा कठिन व्रत धारण करते जग में ब्रह्म विवेकी लोग
वसन विभूषण धन वनितादिक देते त्याग सभी उपभोग
मिले न पहिले अथवा हम पै आगे मिले कहां यह भाग ?
"इच्छा" में ही ग्रसित होरहे, वह भी नहीं सके हम त्याग

(१४)

धन्य महात्मा, बैठ गुफाओं में करते श्रीहरिका ध्यान ।
उनके प्रेम-अश्रु आनन्दित हो पक्षी गण करते पान ॥
हाय ! हमारी आयु मनोरथ-मन्दिर-वापी-तट-वन में-
क्रीड़ा करती क्षीण हो रही जन्म अकार्थ गया इनमें ॥

(१५)

भीख मांग कर रूखा टुकड़ा खाते हैं दिनमें इकबार ।
शय्या पृथ्वी है उनकी बस केवल देह मात्र परिवार॥
फटे पुराने वस्त्र पहिननेको मिल जायें तो बड़ भाग ।
अचरज है पर विषय वासना वे भी नहिं सकते हैं त्याग॥

(१६)

स्तनौ मांस ग्रन्थी कनक कलशा वित्युप मितौ ।
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम् ॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरशिर स्पर्धि जघनं ।
मुहुर्निन्द्यं रूपं कविजन विशेषैर्गुरु कृतम् ॥

(१७)

एको रागिषु राजते प्रियतमा देहार्धहारीहरो ।
नीरागेषु जनो विमुक्त ललना संगोन यस्मात्परः ॥
दुर्वारस्मर बाण पन्नग विष व्याविद्ध मुग्धोजनः ।
शेषः कामविडंबितान्न विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः॥

(१८)

अजानन् दाहात्म्यं पततु शलभस्तीव्रदहने ।
समीनोऽप्यज्ञानाद्बडिश युत मश्नातु पिशितम् ॥
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जाल जटिला-
न्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोह महिमा ॥

(१९)

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं शीत मधुरं ।
क्षुधार्तः शाल्यन्नं कवलयति मांसादिकलितम् ॥
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतर मालिंगति वधूं ।
प्रतिकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥

(१६)

मांस-पिण्डनारी कुचको कवि कहते कनक कलश उपमान
थूक खकार भरे मुँह को कहते हैं सुन्दर चन्द्र समान ॥
मूत्र टपकते हुये जघन को श्रेष्ठ हस्ति गण्डस्थल सम ।
निन्दनीय तिय रूप बनाया है कवियों ने सुन्दर-तम् ॥

(१७)

वामांगे प्रियतमा विराजी महादेव रागी ऐसे ।
विरत विचरने वालों में भी श्रेष्ठ और त्यागी ऐसे ॥
अन्य नहीं है कोई जग में उन सम रागी या त्यागी ।
भोग सकें नहिं छोड़ सकें नहिं काम विडम्बित अनुरागी

(१८)

दीपक पर जल जाने की कुछ बात जानता नहीं पतंग ।
मछली भी यह नहीं जानती बंसी प्राण करेगी भंग ॥
जान बूझकर भी हम से छुटती न विषय अभिलाषा है ।
महामोह की महिमा का यह कैसा कठिन तमाशा है॥

(१९)

कण्ठ सूखने पर प्यासा जन शीतल पानी पीता है ।
भूखा-मरता-अन्न शाक वा चावल खाकर जीता है ॥
कामाग्नि प्रचण्ड होने पर, करता अलिंगन नारी ।
व्याधि प्रतीकारक कामों को उलटा सुख समझा भारी॥

(२०)

तुंगं वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्यातिगाः संपदः।
कल्याणी दयिता वयश्च नवमित्यज्ञान मूढो जनः ॥
मत्वा विश्व मनश्वरं निविशते संसार कारागृहे ।
संदृश्य क्षण भंगुरं तदखिलं धन्यस्तु संन्यस्यति ॥

(२१)

दीना दीन मुखैः सदैव शिशुकैराकृष्ट जीर्णाम्बरा ।
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा दृश्या न चेद्गेहिनी ॥
याञ्चा भंग भयेन गद्गद गलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं ।
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वीपुमान् ॥

(२२)

अभिमत महामान ग्रन्थि प्रभेद पटीयसी,
गुरुतर गुणग्रामांभोजस्फुटोज्ज्वलचंद्रिका।
विपुल विलसल्लज्जा वल्लीवितान कुठारिका,
जठरपिठरी दुष्पूरेयं करोति विडम्बनाम् ॥

(२३)

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सित पटच्छन्न पालिं कपालिं
ह्यादायन्यायगर्भं द्विजहुत हुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठे ॥
द्वारं द्वारं प्रविष्टो वर मुदर दरी पूरणाय क्षुधार्तो ।
मानी प्राणैः सनाथो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥

(२०)

ऊँचा घर विद्वान पुत्र अत्यन्त अपरमित धनराशी ।
गुण सम्पन्न भार्या पाकर नव वयस्क जग-विश्वासी॥
शाश्वत समझ-विश्व-"बन्दीघर" में कोई रहता अनुरक्त
क्षण भंगुर जग समझ दूसरा धन्य पुरुष करता है त्यक्त

(२१)

दीन अधीर भूख से व्याकुल बालक गण रोते रोते-
भूखी मां का पल्ला खींचें, लखि पतिदेव दुखी होते ॥
अतः मनुज मँगता बन मांगे, मान भंगसे नहिं डरता।
अपना पेट पालने को तो कौन नीचता यह करता ?

(२२)

कीर्ति प्रतिष्ठा महामान नरका अति शीघ्र मिटाती है।
शशि होकर गाम्भीर्य आदि गुण-कमलों को सकुचाती है॥
लज्जा-लता फली फूलों को तोड़ण एक कुठारी है ।
भरती नहीं पेट-पिठरी यह अति बिडम्बनाकारी है ॥

(२३)

बड़े ग्राम या वनमें, पट से ढक लेकर ठिकरा करमें-
न्याय पूर्वक होम धूम से मलिन द्वार हो उस घरमें।
भिक्षा हेत घूम फिरके इस पेट कन्दरा को भरना ।
अच्छा है पर सम लोगों में नहीं दीनता को करना ॥

(२४)

गंगा तरंग कण शीकर शीतलानि,
विद्याधराध्युषित चारु शिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि,
यत्सावमान पर पिण्डरता मनुष्याः ॥

(२५)

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरावा गिरिभ्यः।
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यःसरस फलभृतो वल्कलिन्यश्चशाखा।
वीक्ष्यन्तेयन्मुखानि प्रसभमपगत प्रश्रयाणां खलानां ।
दुःखाप्तस्वल्पवित्तस्मय पवन वशानर्तित भ्रूलतानि ॥

(२६)

पुण्यैर्मूल फलैस्तथा प्रणयिनीं वृत्तिं कुरुष्वाधुना ।
भूशय्यां नव पल्लवैरकृपणैरुत्तिष्ठ यावो वनम् ॥
क्षुद्राणामविवेक मूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा ।
वित्तव्याधिविकार विह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥

(२७)

फलंस्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां ।
पयःस्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्य सरिताम् ॥
मृदु स्पर्शाशय्या सुललित लता पल्लवमयी।
सहन्ते सन्तापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः ॥

(२४)

गंग तरंगों के जल कण से रहती है शीतलताई ।
विद्याधर जहां ठौर ठौर पर बैठे रहते सुखदाई ॥
प्रलय प्राप्त होगई सभी क्या हिमगिरि की सुन्दर चट्टान
जोकि पराया दिया ग्रास नर खाता है सहकर अपमान

(२५)

कन्द कन्दरा निर्झर वन क्या प्रलय प्राप्त होगये कहीं ।
क्या वल्कलमय वृक्षोंमें फलवाली शाखा रही नहीं ॥
जो नर कष्ट सहन कर दुष्टों के आश्रय में रहता है ।
क्रोध पूर्ण टेढ़ी भौंवों को देख अनादर सहता है ॥

(२६)

खाने को फल फूल मूल भू शय्या मिल जाती वनमें ।
बने बनाये सुन्दर वल्कल वस्त्र पहिनने को तनमें ॥
धन अभिमानी क्षुद्र जनोंका जहां नहीं सुन पड़ता नाम
ऐसे सुखमय सुन्दर वनमें जाकर चलो करें विश्राम॥

(२७)

फलाहार वन वनमें इच्छित नित्य प्राप्त होता रहता ।
ठौर ठौर पर नदियोंमें जल शीतल शुद्ध मधुर बहता॥
पल्लवमयी लताओंका अति सुन्दर स्वच्छ बिछोना है।
तोभी धनिकों के द्वारे कृपणों को क्लेशित होना है॥

(२८)

ये वर्तंते धनपतिपुरः प्रार्थना दुःख भाजो।
ये चाल्पत्वं दधति विषया क्षेप पर्याप्त बुद्धेः॥
तेषामन्तः स्फुरित हसितं वासराणिस्मरेयं।
ध्यानाच्छेदे शिखरि कुहर ग्राव शय्यानिषण्णः॥

(२९)

ये सन्तोष निरन्तर प्रमुदितास्तेषां न भिन्नामुदो।
ये त्वन्ये धन लुब्ध संकुलधियस्तेषां न तृष्णाहताः॥
इत्थं कस्य कृते कृतः स विधिना ता तादृक्पदं संपदां।
स्वात्मन्येव समाप्त हेम महिमा मरुर्न मे रोचते॥

(३०)

भीक्षाहार मदैन्यमप्रति सुखं भीतिच्छिदं सर्वतो।
दुर्मात्सर्य मदाभिमानमथनं दुःखौघनिध्वंसनम्॥
सर्वत्रान्वहमप्रयत्न सुलभं साधु प्रियं पावनं।
शंभोः सत्रमवार्य मक्षयनिधिं शसंतियोगीश्वराः॥

(३१)

भोगे रोगभयं कुलेच्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं।
मौने दैन्यंभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्॥
शास्त्रे वादिभयं गुणे खल भयं काये कृतान्ताद्भयं।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाभयम्॥

(२८)

जो धनिकोंके निकट' याचना दुख''का भोग रहे हैं भोग
विषयाधीन बुद्धि करके जो लघु हो रहे जगत में लोग
गिरि-कन्दर-चट्टान सेज पर सोते हुये ध्यान के बाद -
उन्हीं दिनोंको मनही मन हम हँसते हुये करेंगे याद॥

(२९)

जो हैं तृप्त निरन्तर उनका घटता नहीं कभी आनन्द ।
धन लोभी, व्याकुल लोगोंकी तृष्णा भी होती नहीं मंद॥
ऐसा है तो विधिने कञ्चनमय सुमेरु क्यों रचा बुलन्द ?
जो दोनोंहित वृथा ''आप अपने हितहै'' नहिं मुझे पसन्द

(३०)

सब भयहारी, सुखकारी नितदैन्य रहित शुभ भिक्षाहार
दुष्टोंका मद मत्सर नाशक दुख विनाशक सभी प्रकार ॥
सहज प्राप्य सब जगह सदाही प्रिय,पवित्र सन्तोंके जोग
शिव तृप्ति कारक भिक्षा को, नित्य प्रशांत योगी लोग

(३१)

भोग, रोग भय, कुल अवनति भय धनमें नृपभय होता है
मौन, दैन्य भय बलमें रिपु भय, रूप बुढापा खोता है॥
शास्त्र विवाद गुणी खल भयको देह मृत्यु भयको सहता
सब वस्तुयें भूमि भयकारी, ''वैरागी निर्भय रहता ॥

(३२)

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरसा चात्युज्ज्वलं यौवनं ।
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगना विभ्रमैः ॥
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतयोऽप्युपहता ग्रस्तं न किं केन वा ॥

(३३)

आधि व्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते ।
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृत द्वारा इव व्यापदः ॥
जातं जातमवश्य माशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसा-
त्तत्किं तेन निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थरम् ॥

(३४)

भोगास्तुङ्ग तरंग भंग तरलाः प्राणाः क्षणः ध्वंसिनः ।
स्तोकान्येव दिनानि यौवन सुखस्फूर्तिः प्रियासुस्थिता
तत्संसारमसार मेव निखिलं बुध्वा बुधा बोधका ।
लोकानुग्रह पेशलेन मनसा यत्नः समाधीयताम् ॥

(३५)

भोगा मेघ वितान मध्य विलसत्सौदामनी चञ्चला ।
आयुर्वायुविघट्टिताब्ज पटली लीनाम्बु वद्भंगुरम् ॥
लोला यौवन लालसास्तनुभृतामित्या कलय्य द्रुतं ।
योगे धैर्य समाधि सिद्धि सुलभ बुद्धिविधध्वं बुधाः ॥

(३२)

मृत्यु जन्मको और बुढापा युवापने को करता ग्रास ।
धन लिप्सा सन्तोष नशाती प्रौढयुवति गण शांति विनास
मत्सरियों ने गुण, सर्पों ने वन दुष्टों ने नृपति कहीं ।
चञ्चलताने धैर्य जगतमें किसीने किसीको ग्रसा नहीं?

(३३)

हाय ! सैंकड़ों रोगोंने जड़ खोदी स्वास्थ्य मिटा डाला
जहां द्रव्य है वहां विपत आ पड़ती तोड़ द्वार ताला॥
जो जन्मा है उसे मौत बल पूर्वक आन दबाती है।
विधि निर्मित है कौन वस्तु ? जो जगमें थिर कहलाती है

(३४)

छण भंगुर हैं प्राण और चञ्चल है भोग तरंग समान ।
यौवन सुख भी प्रिय पत्नीढिग थोड़ेही दिनका मिहमान
इस कारण हे बुद्धिवरो ! यह जगत जान निस्सार महान
लोक अनुग्रह हेतु करो कुछ यत्न हृदय में ब्रह्मध्यान ॥

(३५)

बादलमें बिजली सम चञ्चल-देह धारियों के सब भोग
आयू क्या है ? वायु-विडोलित-पद्म-पत्रमें जल-कण-योग
भोग लालसा यौवन सुख सब हैं अस्थिर निःसार महान
योग समाधी-सिद्धि-सुलभ-सुख पाओ करके ब्रह्मध्यान॥

(३६)

आयुः कल्लोल लोलं कतिपय दिवसस्थायिनी यौवन श्री-
रर्थाः संकल्पकल्पा घन समय तडिद्विभ्रमा भोग पूगाः॥
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम्॥

(३७)

कृच्छ्रेणामेध्य मध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये
कान्ता विश्लेष दुःखव्यतिकर विषमो यौवने चोप भोगः
वामाक्षीणामवज्ञा विहसित वसतिर्वृद्धभावोऽप्य साधुः।
संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित्

(३८)

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरंति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्न घटा दिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्॥

(३९)

भोगाभंगुर वृत्तयो बहु विधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येह कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः॥
आशा पाश शतोप शांति विशदं चेतः समाधीयताम्
कामोत्पत्ति वशात्स्वधामनि यदि श्रेयमस्मद्वचः॥

(३६)

जल तरंग सी चंचल आयु अल्पकाल यौवन रहता।
द्रव्य मनोरथ तुल्यक्षणिक अरुभोग तडितकी गतिलहता।
कभी थिर नहीं रहता जगमें गले लगाना प्रिया प्रवीन।
अतः भवाब्धि पार होनेको करो ब्रह्ममें चित्तको लीन॥

(३७)

शिशु मल-मूत्र मध्यमें रहता, गर्भस्थित हो बन्दी बन-
प्रियावियोग दुःखसे क्लेशित युवा अवस्थामें छन छन॥
बूढ़ेपनमें नीचा सिर कर पड़ा सोचता सह अपमान-
अरेमनुष्यों ! कहां बताओ ? जगमें सुखका नामनिशान

(३८

वृद्धावस्था खड़ी सामने व्याघिन सी डरपाती है।
शत्रु समान व्याधि इस तनपर नित डण्डे बरसाती है॥
फूटे घट से नीर टपकने सम जाती आयू सारी-
फिरभी जगमें अहित काम हम करते हैं अचरज भारी॥

(३६)

नाशमान हैं विषय भोग सब, जगमें भव बंधनकारी।
भोग चक्रमें भ्रमते हो क्यों ? जान बूझकर नर-नारी।
करो शुद्धचित्त, अफल चेष्टा छोड़तोड़ कर आशा पाश
अगर हमारी मानो तो नितसुमरो श्रीहरि स्वयं-प्रकाश

(४०)

ब्रह्मेंद्रादिमरुद्गणांस्तृण कणान् यत्रस्थितो मन्यते ।
यत्स्वादाद्विरसा भवंति विभवास्त्रैलोक्य राज्यादयः ॥
भोगः कोऽपि स एक एवपरमो नित्योदितो जृंभते ।
भो साधो क्षण भंगुरे तदितरे भोगे रतिं मा कृथाः ॥

(४१)

सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामंत चक्रं चत-
त्पार्श्वे तस्य च सा विदग्ध परिषत्ताश्चन्द्र बिम्बाननः ॥
उद्वृत्तः स च राज पुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः
सर्वं यस्य वशाद्गात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः ॥

(४२)

यत्रानेकः कश्चिदपिगृहे तत्र तिष्ठत्यथो को ।
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपिचान्ते ॥
इत्थं नेयै रजनिदिवसौ लोलयन् द्वाविवाक्षौ ।
कालः कल्यो भुवन फलके क्रीडति प्राणशारैः ॥

(४३)

आदित्यस्य गता गतैरहरहः संक्षीयते जीवितं ।
व्यापारैर्बहु कार्य भार गुरुभिः कालेऽपिन ज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्म जरा विपत्ति मरणं त्रासश्चनोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरा मुन्मत्त भूतं जगत् ॥

(४०)

जिसे प्राप्त करने पर नरको विधि, सुरेश तृणसम लागे
तीन-लोकका राज्य-विभव भी फीका है जिसके आगे॥
परम भोग जो नित्य उदित है ब्रह्मानन्द रूप सुन्दर।
साधो उसको साधो तुम क्षणभंगुर भोग सभी तजकर॥

(४१)

विस्तृत राज्य, विभवशाली नृपकी थी यहां राजधानी।
सभा भवन सुन्दर महलों में कई मयंक मुखी रानी॥
राजकुमार-समूल प्रबल था वन्दी-गण गाते गुण ग्राम।
आज कालके गाल गये सब, अहो? काल है तुम्हें प्रणाम

(४२)

जहां कई थे वहां एक है जहां एक था वहां अनेक।
और अनेकोंमें भी अब तो शेष रह गया है बस एक॥
विश्वरूप चौपड़ में देखा रात-दिवस के पासे डाल।
सभी प्राणियों की गोटीसे खेल खेलता है यह काल॥

(४३)

उदय अस्त होने से दिन दिन घटती गई आयु सारी।
बीता काल उलझ कर यूहीं जीवन-कार्य-भार भारी।
जन्म बुढ़ापा मरण विपत्ति, नित्य देखकर भी नहिं डर
मस्त हुवा है जगत आजकल मोहमयी मदिरा पीकर॥

(४४)

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो ।
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृत प्रारब्ध तत्तत्क्रियाः ॥
व्यापारैः पुन रुक्त भुक्त विषयीरित्थं विधेना मुना ।
संसारेण कदर्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे ॥

(४५)

न ध्यातं पद् मीश्वरस्य विधिवत् संसार विच्छित्तये ।
स्वर्गद्वार कपाट पाटन पटुर्धर्मो ऽपिनोपार्जितः ॥
नारी पीन पयोधरोरु युगुलं स्वप्ने ऽपिनालिङ्गितं ।
मातुः केवल मेव यौवन वनच्छेदे कुठारा वयम् ॥

(४६)

नाभ्यस्ता प्रतिवादि वृन्द दमनी विद्या विनीतोचिता ।
खड्गाग्रैः करि कुम्भ पीठ दलनैर्नाकं न नीतं यशः ॥
कान्ता कोमल पल्लवाधर रसः पीतोन चन्द्रोदये ।
तारुण्यं गत मेव निष्फल महो शून्यालये दीपवत् ॥

(४७)

विद्यानाधिगता कलंक रहिता वित्तंच नोपार्जितं ।
शुश्रूषापि समाहितेन मनसापित्रोर्न सम्पादिता ॥
आलोलायत लोचनाः प्रियतमाः स्वप्नेपिनालिंगिता ।
कालोऽयं पर पिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते ॥

(४४)

वहीरात है वही दिवस यह जान बुद्धि वाले भी लोग
वही काम करते हैं जिनका भोग रहे अब भी फल भोग ॥
भोगे हुये सभी विषयों में करते हैं भारी उद्योग ।
अहोमोह फिर भी लज्जित क्यों नहिं होते हम निन्दायोग

(४५)

ध्यान किया नहिं हरिचरणों का जन्म मरण छूटे संसार
पुण्य महान किया नहिं संचय जो खुल जाये स्वर्ग के द्वार
स्वप्ने में भी तिय-कुच जंघा उरसे लगी न किसी प्रकार
तो केवल हम माता-यौवन-वन हित पैदा हुये कुठार ।

(४६)

सज्जन सुखद विवादि-दमन विद्याका किया नहीं अभ्यास
खड्गधार से हस्तिमार नहिं किया स्वर्गतक कीर्ति प्रकाश
चन्द्रबदनिका चन्द्रनिशा में अधर सुधा-रस नहीं पिया ।
हाय ! हमारी आयु गई ज्यों शून्य भवन बुझ जाय दिया ॥

(४७)

अकलंकित विद्या न पढ़ी और कभी कमाया भी नहिं धन
मात पिता सेवा सुश्रूषा में भी नहीं लगाया मन–
स्वप्ने में भी गले लगी नहिं कभी चपल नैनी बाला ।
कव्वे सम पर ग्रास लोभ में यूँ हीं जन्म बिता डाला ॥

(४८)

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिचिता एव खलु ते।
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना।
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः॥

(४९)

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं।
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः॥
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभि र्नीयते।
जीवे वारितरंगचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥

(५०)

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः॥
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः॥
जराजीर्णै रंगैर्नट इव बलीमण्डिततनु-
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानी यवनिकाम्॥

(५१)

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः।
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः॥
इत्थं मानधनातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं।
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः

(४८)

जिनसे हम जन्मे थे वे चिर परिचित चले गये प्यारे।
जिनके साथ बढ़े थे वे भी गमन कर चुके हैं सारे॥
हम भी दिन दिन ढलते जाते पतन दशा भयकारी है।
सिकता-मय सरिता-तट-तरुसी हालत हुई हमारी है॥

(४९)

नर आयुष सौ वर्ष प्रथम तो फिर आधी गई सोने में।
शेष दो तिहाई भी बीती बाल,वृद्धपन होने में॥
व्याधिवियोग दुःखमें जो कुछ रही हुई वह सभी समाप्त
जल तरंग सम चंचल जीवन कहाँ प्राणियों को सुख प्राप्त

(५०)

क्षण में बालक होता नर फिर क्षण में होता रसिक युवा।
क्षण में बना दरिद्र क्षण में संपतिशाली धनी हुवा॥
क्षण में बूढ़ा जीर्ण हुवा है सिकुड़ा चमड़ा दिखलाता।
बहुरूपिये समान रूप धर यम-परदे में लुप जाता॥

(५१)

तू राजा है, बुद्धिमान मैं उन्नत गुरु आज्ञाकारी।
तू विख्यात जगत में धन से मैं विद्या-धन से भारी॥
मान और धन दोनों में हम तुममें अन्तर बहुत बड़ा-
तू मुझसे मुंह मोड़ रहा मैं तुझसे निस्पृह दूर खड़ा॥

(५२)

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थं ।
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरुपशमनविधावक्षयं पाटवं नः ॥
सेवन्ते त्वां धनाढ्या मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामाः
मय्यप्यास्था न ते चेत्त्वयि मम नितरामेव राजन्ननास्था

(५३)

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः ।
सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः ॥
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला ।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः

(५४)

फलमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं ।
क्षितिरपि शयनार्थं वाससे वल्कलं च ॥
नव धन मधुपान भ्रांत सर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥

(५५)

अशीमहि वयं भिक्षा माशावासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥

(५२)

तुम धन के ईश्वर होतो हम भी विद्या के ईश्वर हैं।
युद्धवीर तुमहो हम भी तो वाद विवाद धुरन्धर हैं॥
हमें चाहते विद्वज्जन लोभी सब तुम्हें चाहते हैं-
यदि तुम हमें न चाहो तो हम भी कब तुम्हें चाहते हैं।

(५३)

तुम दुकुल को पहिन तुष्ट हो हम बल्कलसे तुष्ट महा।
दोनों की जब तुष्टि बराबर हम तुम में क्या भेद रहा॥
वही दरिद्री होता है जिसकी तृष्णा होती बलवान।
जब सन्तोष पूर्ण मन है तो कौन दरिद्री को धनवान॥

(५४)

मिलता मधुर जल मूल फल जब पेट भरनेके लिये
वल्कल वसन शुचि भूमि शय्या शयन करनेके लिये
तब इन्द्रियों के दास धन मद मत्त जो निशि दिन रहैं
उन दुर्जनों के पास रह कर हम निरादर क्यों सहैं॥

(५५)

रह कर दिगम्बर ही सदा भिक्षान्न ही हम खायेंगे।
आनन्द मय पृथ्वी सुतल पर नींद में सो जायेंगे॥
निसि दिवस अपने इस प्रकार सदैव जबकि बितायेंगे
पृथ्वीश्वरों के पास तब हम किस लिये क्यों आयेंगे॥

(५६)

न नटा न विटा न च गायका न च सभ्येतर वादचुंचवः
नृप मीक्षितुमत्र के वयं स्तनभारानमिता न योषितः॥

(५७)

विपुल हृदयैरीशैरेतज्जगज्जनितं पुरा,
विधृत मपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते,
कतिपय पुरस्वाम्ये पुंसां क एव मदज्वरः॥

(५८)

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न जातं नृपशतै—
र्भुवस्तस्या लाभे क इव बहुमानः क्षितिभृताम्।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो,
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम्॥

(५९)

मृत्पिण्डो जल रेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणुः।
स्वांशीकृत्य तमेव संगरशतै राज्ञां गणा भुंजते॥
यं दद्युर्ददतोऽथवा किमपरं क्षुद्रा दरिद्रा भृशं।
धिग्धिक् तान्पुरुषाधमान्धनकणान्वांछन्ति तेभ्योऽपि ये

(५६)

नट हैं न लम्पट हम कभी परनारियों को जो चहैं ।
गायक नहीं, न लवार हैं जो बात झूठी ही कहैं ॥
फिर हम पयोधर पीन वाली योषिता भी तो नहीं ।
तब यह बताओ राज दर्शन हो हमें कैसे कहीं ॥

(५७)

कोई महात्मा थे जिन्होंने विश्व को पैदा किया ।
धारण किसीने अरु किसीने तुच्छ तृण सम तज दिया
कोई ऐसे हैं कि चौदह भुवन का पालन करें ।
कुछ गांव पाकर लोग अह ! अभिमानके ज्वरमे जरें॥

(५८)

अपनी समझ भू नृपति शतशः बिनहि भोगे चल दिये
फिर क्या कभी पाकर इसे अभिमान करना चाहिये ?
अंशांश का अंशांश पा, निजको नृपति जन मानता ।
आश्चर्य मूर्ख विषाद को आनन्द ही है मानता ॥

(५९)

है भूमि लघु मृत्पिण्ड इक चहुँ ओर पानीसे घिरी ।
कुछ भाग भूपति भोगते लड़ लड़ लड़ाइयां ही निरी॥
ऐसे दरिद्री क्षुद्र से, आशा—रखें दाता कहैं—
धिक्कार है उनको, कि जो उनसे कभी धन कण चहैं॥

(६०)

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं।
कपालं यस्योच्चैर्विनिहित मलङ्कारविधये॥
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना।
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः॥

(६१)

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा।
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलितम्॥
प्रसन्नेत्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगणो।
विविक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते॥

(६२)

परिभ्रमसि किं मुधा क्वचन चित्त विश्राम्यतां।
स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा॥
अतीतमननुस्मरन्नपि च भाव्यसंकल्पय-
न्नतर्कितसमागमा ननु भवामि भोगानहम्॥

(६३)

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादाश्रय।
श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात्॥
स्वात्मीभावमुपेहि संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं
मा भूयो भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना॥

(६०)

जगमें पुरातन काल में ऐसे पुरुष भी हो चुके।
जिनके कि शिर लेकर स्वयं शिव कण्ठमाला पो चुके
निज प्राणपोषक नयन लोभी कुछ प्रतिष्ठा प्राप्तकर।
अभिमान ज्वर में क्यों जले जाते हैं जगमें नृपतिवर॥

(६१)

रे मन बता प्रति दिवस क्यों परचित्त आराधन करे
है चाह तुझको कौनसी जो क्लेश हृदय में भरे॥
संकल्प तृष्णा छोड़ सब हो मग्न अपने में स्वयम्।
हो शांत औ सन्तोषमय,मिल जाय चिन्तामणि परम्॥

(६२)

तू घूमता रे मन कहां विश्राम ले अब तो कहीं
होतव्य होना है स्वयम् कुछ अन्यथा होना नहीं।
मैं भूत और भविष्यका संकल्प कुछ करता नहीं
हां! वर्तमान अतर्क भोगों से कभी डरता नहीं॥

(६३)

रे मन ले विश्राम सुखद श्रम प्राप्त विषय रूपी वनसे-
दुखध्वंसकारी समर्थ कल्याण पथ पर चल मन से।
शांत भाव कर ग्रहण तरंगों सी चचलता छोड़ सभी
नाशमान जग इच्छा तज आनन्द रूप हो जाय अभी॥

(६४)

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूड़ामणौ,
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासंगमंगीकुरु ।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च श्रीषु च ।
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सुहृद्वर्गेषु च प्रत्ययः ॥

(६५)

चेतश्चिंतय मारमां सकृदिमामस्थायिनीमास्थया ।
भूपालभ्रुकुटीकुटीविहरणव्यापारपण्यांगनाम् ॥
कन्था कंचुकिनः प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसी ।
रथ्या पंक्तिषु पाणिपात्रपतितां भिक्षामपेक्षामहे ॥

(६६)

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वयोर्दाक्षिणात्याः ।
पश्चाल्लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ॥
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लंपटत्वं ।
नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥

(६७)

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं ।
न्यस्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ॥
सम्पादिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं—
कल्पस्थितास्तनुभृतां तनवस्ततः किम् ॥

(६४)

मोह छोड़ चित अर्ध चन्द्र-सिरधारी-शिवका ध्यान लगा
गंगातट वृक्षों के नीचे अपना आसन आन लगा ॥
जलतरंग बुलबुले अग्निकी शिखा और विद्युत आभास
सर्प तथा सुहृदों के थिर रहने का जगमें क्या विश्वास

(६५)

जो नृप-भृकुटी-रूप-कुटी में वारांगना बनी विहरे।
उस चंचल लक्ष्मी की इच्छा हे मन तू किसलिये करे।
कंथा कंचुक पहिन शिवपुरी की गलियों में घूमें हम।
हस्तपात्र में गिरी हुई बस भिक्षा ही हो हमें अलम ॥

(६६)

सन्मुख गायक गाते हों कवि काव्य कहें दायें बायें।
कंकण ध्वनि करती हों पीछे चँवर डुला कर महिलायें॥
ऐसा अवसर तुझे प्राप्त हो तो जगके रसका ले स्वाद
नहिं तो चित्त समाधि स्थिर होकर श्रीहरि चरणों को याद

(६७)

सकल कामना दुहने वाली जो लक्ष्मी पाई तो क्या?
शत्रुशीश पगधरा प्रशंसा दुनियां में गाई तो क्या?
धनसे उसको मिले जगत में मित्र बन्धु भाई तो क्या?
तनधारी तन रहा कल्प भर मृत्यु नहीं आई तो क्या?

(६८)

भक्तिर्भवे मरण जन्मभयं हृदिस्थं,
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ।
संसर्ग दोष रहिता विजना वनान्ता,
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥

(६९)

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि-
तद् ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ।
यस्यानुषंगिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥

(७०)

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य,
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं,
न ब्रह्म संस्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥

(७१)

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराण पठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः ।
स्वर्गग्राम कुटीनिवास फलदैः कर्म क्रियाविभ्रमैः ॥
मुक्त्वैकं भव दुःख भार रचना विध्वंस कालानलं ।
स्वात्मानन्द पद प्रवेश कलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥

(६८)

शिव भक्ति से हृदय भरा हो जन्म मरण-भय हो न हृदय
बन्धु वर्गमें प्रेम न हो और काम विकार सभी हो जाय॥
सब संसर्ग दोष को तज कर वन में बैठे हो वेलाग।
मांगन योग जगतमें इससे और अधिक क्या है वैराग॥

(६९)

उसी अनन्त अजर सर्वोत्तम शोक रहित आनंदागार
सत्‌चित्‌ आनंदका चिंतनकरतज संकल्पविकल्पविचार
जिसपर ब्रह्म परम प्रभुका कुछ लेश मात्र आनन्दाभास
पाकर व्यर्थ समझता है नर त्रिभुवनका सबभोग विलास

(७०)

हे चित्त! तू चंचलतासे कर जाता है पाताल प्रवेश।
फिरआकाश लांघकर क्षणमें भ्रमण करे दिग्मण्डलदेश॥
पर भूलेसे कभी न करता हृदयस्थित श्रीहरिका ध्यान
जिसके केवल स्मरण से ही तुझे मिले आनन्द महान॥

(७१)

वेद पुराण शास्त्र स्मृति सब पढ़नेसे मिलता क्या फल !
स्वर्ग ग्राम कुटिया ही मिलती कर्म क्रिया श्रमसे केवल॥
प्रलय अनल समनाशक है जो भव बंधनका सब दुख भार
आत्मानन्द न पाया तो बस सब वैश्यों का ही व्यापार॥

(७२)

यतो मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निवलितः,
समुद्राः शुष्यंति प्रचुर मकर ग्राहनिलयाः ।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता,
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥

(७३)

गात्र संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धतेबधिरता वक्त्रं च लालायते ॥
वाक्यं नाद्रियते च बांधवजनो भार्या न शुश्रूषते ।
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ॥

(७४)

वर्णं सितं झटिति वीक्ष्य शिरोरुहाणां,
स्थानं जरापरिभवस्य तथा पुमांसम् ।
आरोपितास्थिशतकं परिहृत्य यांति,
चंडाल कूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥

(७५)

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो-
यावच्चेंद्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः ॥
आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नोमहान् ।
संदीप्ते भवने तु कूपखनने प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥

(७२)

क्षणमें प्रलय अग्नि से जब श्रीमान सुमेरु उखड़ जाता
सिन्धु सूख जाते हैं सब जो ग्राहों के आश्रय दाता ॥
धराधरों से दबी हुई भी धरा नष्ट होती सुनसान।
नर-शरीर किस गिनतीमें करि-कलभ-करणकीकोरसमान

(७३)

अंग सुकड़ने दांत उखड़ते गिरते पड़ते चला न जाय।
अन्धापन वहिरापनका दुख मुखसे लार टपकती हाय॥
भाई बन्धु भी बात न सुनते सेवा नहिं करती नारी।
पुत्र शत्रुता रखने लगते अहः बुढ़ापा दुख भारी॥

(७४)

तरुणस्त्रियां बूढ़े जनों के श्वेत बालों को निहार।
बस उसे मन में समझ लेती बुढ़ापे का शिकार॥
चाण्डाल कूप कि सैंकड़ों हाड़ों से जो भरपूर हो।
ऐसा समझ कर वृद्ध को वे छोड़ देतीं दूर हो॥

(७५)

जबतक स्वस्थ शरीर पुष्ट है बूढ़ापन है जबतक दूर।
जबतक शक्ति इन्द्रियोंमें है जबतक आयुष है भरपूर॥
तबतक बुद्धिमान अपना कल्याण उपाय महान करे।
घर जलने पर कूप खोदने के श्रममें क्यों वृथा मरे॥

(७६)

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं,
गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम्।
पिबामः शास्त्रौघानुत विविध काव्यामृत रसा-
न्न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने॥

(७७)

दुराराध्याश्चामी तुरग चल चित्ताः क्षितिभुजो,
वयं तु स्थूलेच्छाः सुमहति फले बद्धमनसः।
जरा देहं मृत्युर्हरति दयितं जीवित मिदं
सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः॥

(७८)

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनिव्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि।
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने॥
युक्तं केवल मेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्या पयः—
पूतग्राव गिरीन्द्र कन्दर तटीकुञ्जे निवासः क्वचित्॥

(७९)

रम्याश्चन्द्र मरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली।
रम्यं साधुसमागमागतसुखं काव्येषु रम्या कथाः॥
कोपोपाहित बाष्पबिन्दुतरलं रम्य प्रियाया मुखं।
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः॥

(७६)

हम तप करते हुये करें क्या श्रीगंगा के तीर निवास।
या गुणवती नारियों के संग रहते हुये करें परिहास॥
याकि सुनें वेदान्त शास्त्र या करें काव्य अमृत रसपान।
इस निमेष आयुष में क्या क्या करें, हुये हैं हम हैरान ?

(७७)

राजा घोड़े सम चञ्चल चित उसका सेवन कठिन बड़ा।
मोटी इच्छा रखते हम, मन बड़े फलों में बँधा पड़ा॥
बूढ़ी देह, मृत्यु कर देती जीवन का फिर काम तमाम।
अतःमित्र! ज्ञानीकोतप अतिरिक्त और क्या अच्छाकाम

(७८)

मिटे प्रतिष्ठा द्रव्य लुटे याचकगण विमुख फिरें सारे।
यौवन, पुत्र, भार्या, भाई, रहे न कोई भी प्यारे॥
ऐसे समय बुद्धिमानों को यही एक है उचित उपाय।
गंगा जल सिंचित पवित्र गिरिकुञ्ज कुटी में बैठें जाय॥

(७९)

चन्द्र किरण सुन्दर लगती थी सुन्दर वन भू हरियाली।
मित्र समागमका सुन्दर सुख काव्यकथा रति रसवाली॥
सुन्दर कोप अश्रु पूरित प्यारी मुख मन हर्षित करता।
पर जब विश्व अनित्य जचा तब नष्ट हुई सब सुन्दरता॥

(८०)

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्रव्यं न गेयादिकं ।
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकप्रतीये ॥
किं तु भ्रांतपतंगपक्षपवनव्यालोलदीपांकुर—
च्छायाचंचलमाकलय्यसकलं सन्तो वनांतं गताः ॥

(८१)

आसंसार त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ् ।
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रमार्गं गतो वा ॥
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढ़गूढाभिमान—
क्षीवस्यान्तःकरणकरिणः संयमानाय लीलाम् ॥

(८२)

यदेतत्स्वच्छन्दं विहरणमकार्पण्यमशनं ।
सहार्यैं संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ॥
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृश—
न्न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥

(८३)

जीर्णा एव मनोरथाश्च हृदये यातं च तद्यौवनं ।
हन्तांगेषु गुणाश्च वंध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ॥
किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतांतोऽक्षमी ।
हा ज्ञातं मदनांतकांघ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः ॥

(८०)
रहने के हित महल न थे क्या ? गायन थे नहिं सुनने योग।
सुखद समागम प्राण प्रियाका, क्या नहिं था सांसारिकभोग।
पर पतंग के पक्ष-पवन से ज्यों दीपक झोंके खाये।
ऐसा चंचल जगत समझ कर साधु सन्त वन में आये॥

(८१)
जब से यह संसार बना है तब से अब तक ही प्यारे-
देखा सुना न कोई ऐसा जग में खोज चुके सारे॥
अन्तःकरणरूप अभिमानी विषयरूपिणी हथिनी जात्।
ऐसा हाथी रोके जगमें-विषय ग्रसित मनको अर्थात्॥

(८२)
विचरण हो स्वाधीन अयाचित भोजन श्रेष्ठ जनों का संग
सच्छास्त्रों का स्वाध्याय जो करे विषय भोगों को भंग
बाहिर मनका स्पन्द मन्द हो, यह बातें हों प्राप्त कहीं
किस प्राचीन महत तपका फल है यह हम जानते नहीं॥

(८३)
सभी मनोरथ मन ही मन में मैले हुये, गया यौवन।
विना गुणज्ञ जनों के जगमें सभी गुणों का हुवा हनन॥
युक्ति करें क्या सर्व विनाशक काल चला आता है हाय।
मदनशत्रु शिवचरण युगलतज अबतो कोई नहीं उपाय॥

(८४)

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे ।
जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ॥
न वस्तु भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे ।
तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥

(८५)

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने ।
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ॥
भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिव शिवेत्युच्चवचसः ।
कदा यास्यामोऽन्तर्गतबहुलबाष्पाकुलदशाम् ॥

(८६)

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः ।
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामां विधिगतिम् ॥
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणा—
स्त्रियामा नेष्यामो हरचरणचिन्तैकशरणाः ॥

(८७)

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन् ।
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम् ॥
अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शंभो त्रिनयन ।
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

(८४)

जगदीश्वर जनार्दन में कुछ।
समझूँ भेद न मेरी रीति॥
जिनके शिर पर चन्द्र विराजे।
उनके चरणों में है प्रीति॥

(८५)

कहीं प्रकाशित ज्योत्स्नामय निर्मल थल गंगादिक तीर
सुख से बैठे रात्रि समय में, नीरवता हो शांत समीर॥
कब, शिव शिव शिव रटते रटते आनंद अश्रु बहायेंगे-
भव भोगों से विकल आर्त हो अपनी विनय सुनायेंगे॥

(८६)

सब कुछ लुटा कर हृदय में करुणा सुभग भरते हुये।
जगदैव गति के विषम फल को याद नित करते हुये॥
शिव चरण चिंतन की शरण में पुण्य वन में हम कभी।
बैठे शरद की चांदनी रातें बितायेंगे कभी॥

(८७)

होकर खड़ा वाराणसी में कब किनारे गंग पर—
कौपीन पहिरे सिर झुकाये हाथ दोनों जोड़ कर॥
गौरीश हे त्रिपुरारि शम्भो हे त्रिनयन प्रसन्न हो।
कब दिन बिताऊँगा यही कहता हुवा, "पलसम" अहो॥

(८८)

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो त्वां
ध्येये ध्यानं निवेश्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यङ्कमूले॥
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे।
दुःखं मोक्ष्ये कदाहं समकरचरणे पुंसि सेवासमुत्थम्॥

(८९)

एकाकी निःस्पृहः शांतः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः॥

(९०)

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्ष्येण संतुष्यतां।
यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुः पश्यताम्॥
अत्यागेऽपि तनोरखंडपरमानंदावबोधस्पृशा—
मध्वा कोऽपि शिवप्रसादसुलभः संपत्स्यते योगिनाम्॥

(९१)

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी।
नैश्चिन्त्यं निरपेक्षभैक्ष्यमशनं निद्रा श्मशाने वने॥
स्वातंत्र्येण निरंकुशं विहरणं स्वान्तं प्रशान्तं सदा।
स्थैर्यं योगमहोत्सवेऽपि च यदि त्रैलोक्यराज्येन किम्

(८८)

गंगा में न्हाकर सुन्दर फल फूलों से पूजा करता—
बैठ गुहा में हे प्रभु तेरी, मूरति को हिय में धरता॥
आत्माराम तथा फलहारी हे मदनारी कब हूँगा।
राजाओं की सेवा के अति घोर जाल से छूटूँगा॥

(८९)

इच्छा रहित असंग शांत हो पाणि पात्र नंगा फिर कर।
कब कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ हूँगा शंकर॥

(९०)

हस्तपात्र में ही लेते हैं स्वाभाविक शुचि भिक्षाहार।
रहते हैं सन्तुष्ट सदा ही-तृण-समान समझें संसार॥
परमानन्द अखण्ड रूपका अनुभव करते हैं सशरीर।
शिव प्रसाद से मोक्ष पथिक होते ऐसे ही योगी-वीर॥

(९१)

जिनकी कन्था कौपीनों के जर्जर सौ टुकड़े होते।
जो निरपेक्ष अहारी हैं निश्चिन्त मसानों में सोते॥
योग महोत्सवमें जो थिर हैं जिनका मन है नितही शांत।
ऐसे अवधूतोंको तो त्रैलोक्य राज्य भी तुच्छ नितांत॥

(६२)

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ॥
शफरीस्फुरितेनाब्धिः क्षुब्धो न खलु जायते ॥

(६३)

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणी मास्मभू—
र्भोगेषु स्पृहयालवस्तव वशे का निःस्पृहाणामसि॥
सद्यः स्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृतै—
र्भिक्षावस्तुभिरेव संप्रति वयं वृत्तिं समीहामहे॥

(६४)

महाशय्या पृथ्वी विपुल मुपधानं भुजलता।
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः॥
शरच्चन्द्रो दीपो विरतिवनितासंगमुदितः।
सुखी शांतः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव॥

(६५)

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितःस्वायत्तचेष्टः सदा।
दानादानविरक्तमार्गं निरतःकश्चित्तपस्वी स्थितः॥
रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनः संप्राप्तकन्थासनो।
निर्मानो निरहंकृतिः शमसुख भोगैकबद्ध स्पृहः॥

(६२)

कर सकता ब्रह्माण्ड सकल क्या "ज्ञानीका मन" क्षुब्ध कभी?
मछली उछले कूदे तो क्या ? सागर होता क्षुब्ध कभी

(६३)

और किसीका सेवनकर अब माता ! लक्ष्मी हमें न चाह।
विषयी तेरे इच्छुक हैं कुछ नहीं विरक्तों को परवाह॥
उनके ढिग अत्यन्त तुच्छ तू, हम भी वही चलेंगे राह।
ढाक पत्र डौने में भिक्षा, लेकर कर लेंगे निर्वाह॥

(६४)

जिनकी पृथ्वी ही शय्या है हाथों का सिरहाना है ।
है अनुकूल पवन पंखा, आकाश चंदोवा ताना है॥
शरद चन्द्र है दीपक जिनका विरति-भार्या संगानन्द।
शांत सुखी सोते हैं मुनिवर राजाओंके सम स्वच्छन्द॥

(६५)

भिक्षा पाकर संग रहित रह करता है स्वाधीन विहार।
लेने देने के विरक्त मारग में रत रहता हरबार॥
मग के फटे पुराने कपड़ों के टुकड़ों की गुदड़ी धार।
मान रहित कोई तापस है ब्रह्मानन्द मगन संसार॥

(६६)

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः ।
किं वा तत्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ॥
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संभाष्यमाणा जनै—
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥

(६७)

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं ।
व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजस्तुष्टाः स्थलीशायिनः ॥
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां ।
तामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥

(६८)

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य ।
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ॥
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः ।
कंडूयन्ते जरठहरिणाः स्वांगमंगे मदीये ॥

(६९)

पाणी पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं ।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
येषां निःसंगतांगीकरणपरिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते ।
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥

(९६)

यह्द चाण्डाल, ब्राह्मण है, या कोई शूद्र तपस्वी है—
अथवा तत्व विवेक निपुण कोई योगीश मनस्वी है॥
ऐसे ऐसे वचन अनेकों सुनते हैं मारग में मन्द।
हर्ष क्रोधसे रहित योगिजन करते हैं विचरण स्वच्छंद॥

(९७)

हिंसा रहित, प्रयत्न विना, अहि वायू भोजन पाते हैं।
पशु सन्तोषपूर्ण तृण खाकर पृथ्वी पर सो जाते हैं॥
विश्वसिंधु लांघन समर्थ नर बुद्धिमान कहलाते हैं।
उन्हें "वृत्ति" मिलती न खोजने में ही गुण खो जाते हैं॥

(९८)

हिमगिरि शिलाशुभ्र गंगातट पद्मासन आसन आसीन।
आंखें मूँद ब्रह्म ज्ञान अभ्यास योग निद्रा में लीन॥
हम कब होंगे, कब ऐसे फिर सुदिन हमारे, आयेंगे?
हो निशंक बूढ़े मृग हम से अपना अंग खुजायेंगे॥

(९९)

भ्रमण समय ही पाणिपात्र में शुचि भिक्षा कुछ पाते हैं।
पृथ्वी को शय्या निर्मल आकाश सुवस्त्र बनाते हैं॥
नहीं दीनता करें किसी से रहते सदा असंग अनन्य।
कर्ममूल छेदन समर्थ, उन सन्तोषी पुरुषों को धन्य॥

(१००)

मातर्मेदिनि तात मारुतसखे तेजः सुबन्धो जल ।
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामन्त्यप्रणामाञ्जलिः ॥
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतस्फारस्फुरन्निर्मल—
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परब्रह्मणि ॥

(१०१)

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा ।
परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः ॥
जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण—
स्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥

(१०२)

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये ।
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ॥
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा—
नहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥

(१०३)

अतिक्रांतः कालो लटभललनाभोगसुभगो ।
भ्रमन्तः श्रांताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ ॥
इदानीं स्वः सिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः ।
सुतारैः फूत्कारैः शिव शिव शिवेति प्रतनुमः ॥

(१००)

माता पृथ्वी ! पिता वायु ! हेबन्धो जल ! हे सखा प्रकाश
अन्त समय कर जोड़ वन्दना, करता हूँ भाई आकाश
तुम से पुरय पुरय से निर्मल उरमें पैदा ज्ञान हुवा—
मिटा ज्ञान से मोह, ब्रह्म में परम सुखद प्रस्थान हुवा।

(१०१)

जब विवेक से शांति उदित हो तृष्णा भी हो जाती शांत।
वही विषय संसर्ग दोष से होती बड़ी भयानक भ्रांत॥
जरा जीर्ण ऐश्वर्य ग्रसित हो जाती ऐसी कठिन कठोर।
इंद्र त्याग सकता नहिं उसको कौन त्याग सकता है और

(१०२)

पहिले जो विद्या विदुषोंके चित का करती क्लेश हनन।
कुछ दिन पीछे विषयी लोगों के हित हुई विषय साधन॥
शास्त्रविमुख अब नृपतिहुये हैं प्रतिदिन होती जातीनष्ट।
अधोगती को प्राप्त हो रही, हा ! दुखदायी है यह कष्ट॥

(१०३)

सुभगा-भूषित ललना के संग यौवन में रमते रमते।
बीत गया चिरकाल थके हम दुनियां में भ्रमते भ्रमते॥
करते हुये मारि निन्दा अब गंगा तट रहते रहते।
अपना काल बितायेंगे हम, शिव शिव शिव कहते कहते॥

(१०४)

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्—
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ॥
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं ।
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥

(१०५)

सखे धन्याः केचित् त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा ।
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ॥
शरच्चन्द्रज्योत्स्ना धवलगगनाभोगसुभगां ।
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥

(१०६)

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ॥
किं जातमधुना मित्र येन यूयं वयं वयम् ॥

(१०७)

जीर्णाकन्था ततः किं सितममल पटं—
पट्टसूत्रं ततः किम् ।
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणै—
रावृतो वा ततः किम् ॥
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशन मथवा—
वासरान्ते ततः किम् ।

(१०४)

महादेव ही देव एक हैं, नदी एक पावन गंगा।
एक गुफा ही गेह दिगम्बर वस्त्र एक "रहना नंगा"॥
मित्र काल ही: एक यही व्रत होना नहीं किसी से दीन।
कहें कहां तक "वट वृक्ष" ही होय हमारी प्रिया प्रवीन॥

(१०५)

सखा! धन्य है उनको जो वन में बैठे भव बन्धन तोड़
निकल गयाहै विषयरूप "विषधर" जिनके हृदयों कोछोड़।
शरदचन्द्र ज्योत्स्नामय अति,विमल गगन सुन्दर विस्तार
रात बिताते श्वेत चांदनी पुण्य समूह हृदय आधार॥

(१०६)

जो हम हैं सो तुम हो और जो तुम हो सो हम ही हैं।
इस प्रकार हम में तुम में कुछ भी तो भेद नहीं है॥
फिर ऐसी ही बुद्धि हमारी पहिले सदा रही है।
अब क्या हुवा जो तुम तुमही हो अरु हमभी हमही हैं॥

(१०७)

फटी गूदड़ी पहिनी पुरानी तो क्या ?
तन उज्वल वस्त्र सुहाया तो क्या ?
इक भार्या भोगी या कोटि तिया,
गज बाजि समाज जो पाया तो क्या ?
किये व्यञ्जन भोजन तो क्या हुवा ?
टुकड़ा यदि सांझ को खाया तो क्या ?॥

व्यक्तंज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयं.

वैभवं वा ततः किम् ॥

(१०८)

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने ।
तल्लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ॥
भोगःकोऽपि स एक एव परमो नित्योदितोज्जृम्भते ।
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥

(१०९)

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं ।
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ॥
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये ।
कामातुराणामति कामकारणम् ॥

(११०)

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शांतिश्चिरं गेहिनी ।
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः ॥
शय्याभूमितलं दिशोपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं ।
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः ॥

(१११)

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः ।
सारंगाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ॥

भव भंजन ब्रह्म को जाना नहीं,
भव वैभव में भरमाया तो क्या?

(१०८)

जिस परब्रह्म ज्ञान के आगे राज त्रिलोकी का नीरस।
उसे प्राप्तकर असन वसन सन्मान प्रतिष्ठामें मत फँस॥
सुन्दर उत्तम भोग वही जो रहता नित्य प्रकाशित है।
जिसके आगे तीन लोकका स्वाद विरस फीका नित है॥

(१०९)

"ज्ञान" मान, मद, मोह, सज्जनों का है खोता।
किन्तु दुर्जनों को मदादि का कारण होता॥
जिमि एकान्त सहायक है संयम साधन में-
वही काम उपजाता है कामी के मन में॥

(११०)

सखे! बता यह तुही कि जिसका धैर्य पिता क्षमा माता।
शांति भार्या सत्य मित्र है दया बहिन संयम भ्राता॥
वसन दिशायें भूमि सेज है ज्ञानामृत भोजन जिसका।
ऐसे कुनबे में योगी को हो सकता है भय किसका?

येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्येव विद्यांगना।
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः॥

(११२)

यस्यामेव त्रिलोकी सरितिहरशिरश्चुम्बिनीव च्छटायां।
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यां वटविटपभवैर्वल्कलैःसत्फलैश्च॥
कोऽयं विद्वान्विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुःखासिकानां
वक्त्रं वीक्षेत दुःस्थे यदिहिनविभृयात्स्वे कुटुंबेऽनुकंपाम्

(११३)

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः।
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम्॥
आसन्नं मरणं च मंगलसमं यस्यां समुत्पद्यते।
तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते॥

(११४)

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्रातिनाथो यदि।
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यतिप्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः॥
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्यविश्वेशितु—
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम्॥

(१११)

शय्या है चट्टान गुफा घर वस्त्र वृक्ष के वल्कल हैं।
हिरण मित्र फल मूलादिक खा पीते झरनों का जल हैं।
जो विद्या वनिता के प्रेमी ईश्वर सम उनको माने।
सेवा हित औरों के आगे, झुकना जो न कभी जाने॥

(११२)

वट के वल्कल फल देकर निर्वाह सहज कर देती जौन-
ऐसी शिव-शिर चुंबनि सुरसरि के होते जगमें है कौन?
जो विपत्तिज्वर उद्भव दुख से दीर्घ श्वास लेने वाले-
मुख कुटुंबियों का देखे-यदि दया नहीं उन पर पाले॥

(११३)

नाना भोजन खाना ही तप उद्यानों में माना है।
सुन्दर-वस्त्र लँगोटी ही, है भूषण भिक्षा पाना है॥
जहां मृत्यु का आना ही, मंगलकारी बतलाते हैं।
ऐसी काशी छोड़ विदुष अन्यत्र किस लिये जाते हैं?

(११४)

बैठे हैं, विचारते हैं, सोते हैं अब ही समय नहीं-
उठो, हटो, प्रभु देखेंगे तो क्रोधित ना हो जायँ कहीं?
हे चित जिनके द्वारपाल यों रोक रहे तज उनका द्वार।
विश्वेश्वरकी सुखद शरणजा जहां न रोक न कटु व्यवहार॥

(११५)

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।
मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा ॥
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यांति दिवसाः ।
क्वचित्पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपतः ॥

॥ इति श्री भर्तृहरिकृतं वैराग्यशतकं सम्पूर्णम् ॥

(११५)

मुक्ताहार सांप दोनों सम परममित्र या रिपु बलवान।
मणि अथवा पाषाण पुष्प शय्या या पत्थर की चट्टान॥
तृणमें अथवा तिय-समूह में सब में करके दृष्टि समान।
कहीं पवित्र वनमें दिन काटें शिव,शिव,शिव रटते सुखमान

॥ ओ३म् शान्तिः ॥

धार्मिक जगत् में क्रान्ति उत्पन्न करने वाली

प्राचीन प्रसिद्ध

भक्ति

पत्रिका मंगाया करिये ! इसमें आप को योग्य विद्वानों के सरल एवं गम्भीर तथा मार्मिक लेख मिलेंगे। भाव भरी सुन्दर कवितायें, स्वामी विवेकानन्द जी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि सन्तों के उपदेश तथा कबीर जी, सूरदास जी, तुलसीदास जी आदि महात्माओं के पद इसमें प्रकाशित होते हैं। यह पत्रिका बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब के पढ़ने योग्य है। वार्षिक चन्दा २) रु० एक अंक का ≡), नमूने के लिये ≡)। के टिकट भेजना जरूरी है।

पता-भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, (पंजाब)

छप रही है ! छप रही है !! छप रही है !!!

श्री गीता-मञ्जरी

अर्थात्—

श्री भगवद्गीता का राधेश्याम की तर्ज में यथार्थ, सरस एवं सरल हिन्दी अनुवाद

भवसागर दुस्तर गहन, डूब रहा संसार ।
प्रेमी ! गीता-नाव पर, चढ़कर उतरो पार ॥
श्री मद्भगवद्गीता का यह,
अविकल सरस सरल अनुवाद !
इसे पठन करने से मन को,
होता है अतिशय आह्लाद ॥
श्लोक श्लोक का छन्द छन्द में,
अति रोचक ढंग से सब भाव ।
अङ्कित किया गया है जिसको,
पढ़ने से बढ़ता है चाव ॥

(इसका मूल्य लगभग आठ आना होगा ।)

मुद्रक-भूमानन्द ब्रह्मचारी, "भक्तिप्रेस" रेवाड़ी ।